वेदों में राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने का आह्वान

हमारा देश स्वतन्त्रता की स्वर्ण जयन्ती वर्ष में प्रवेश कर चुका है। हमें स्वतन्त्र हुए पचास वर्ष हो चुके हैं। महामान्य तिलक ने कहा था स्वतन्त्रता तो जन्मसिद्ध अधिकार है। स्वतन्त्र व्यक्ति एवं समाज मे ही कला, कौशल्य, ज्ञान, विज्ञान, एवं उन्नति की अनेक सम्भवनाएं जागृत होती हैं। जब राष्ट्र बलशाली एवं सक्षम होता है तो उसे पराधीन करने का साहस किसी भी अन्य राष्ट्र या जाति या समुदाय में नहीं होता है। स्वाधीन एवं सबल राष्ट्र में ही शास्त्र-चिन्तन भी प्रवृत्त होता है। कहा भी है -

शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते।

इसी भावना को संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में अनेक सूक्तों एवं मन्त्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। अथर्ववेद का मन्त्र है -

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु॥

(अथर्व. १९/४१/१)

इस मन्त्र के मुख्यरूप से एक ही विचार दिया है कि देश को राष्ट्र का रूप देकर उसे शक्ति सम्पन्न और गौरवास्पद बनाने के लिए आवश्यक है कि देशवासी तपस्वी और दीक्षित बनें। इन गुणों के आचरण से ही देश में अतुल बल का उद्भव होगा और बड़े बड़े राष्ट्र उसके सम्मुख नतमस्तक होंगे।

ज्ञातव्य है कि हजारों बलिदानियों के तप एवं त्याग से हमारे देश को स्वतन्त्रा मिली है। स्वतन्त्रता की लड़ाई में अनेक व्यक्तियों का त्याग तपस्या एवं बलिदान की भावना ही हमारे राष्ट्र की नींव है। इस सन्दर्भ में एक दृष्टान्त ध्यातव्य है। लोक मान्य तिलक को भारत से निर्वासित करके अंग्रेजों ने मांडले जेल मे बन्द रखा था। 'गीता-रहस्य' नामक अमर कृति उन्होंने वहीं लिखी थी। भारत में उनकी पत्नी सत्यभामा की मृत्यु ५५ वर्ष की अवस्था में हो गई थी। जब भारत से यह सूचना तार द्वारा मांडले जेल भेजी गई थी जेलर जो स्वयं तिलक की विद्वत्ता एवं आचार व्यवहार की पवित्रता से उनका भक्त बन गया था, स्वयं यह सूचना लेकर उनके पास गया। उसका अनुमान था कि सूचना पाकर विशाल हृदय तिलक को उसे धैर्य के कुछ शब्द बोलना चाहिए। तार पढ़कर

तिलक ने उसे एक ओर रख दिया। यह देख जेलर ने कहा कि मैने आप जैसे कठोर हृदय व्यक्ति नहीं देखा जिसकी आखों से पत्नी के मरने पर दो बूंद आंसू भी न गिरे। जेलर के शब्दों ने तिलक को झकझोर दिया। तिलक ने कहा ''मेरे सम्बन्ध में तुम्हारी यह धारणा ठीक नहीं। मैं भी संसार के गृहस्थियों के समान ही पत्नी से अनुराग रखता था। उनकी बिदाई मेरे लिए दुःखदायी है। परन्तु उसके वियोग में आंसुओं का न गिरना हृदय की कठोरता नही है। वास्तव में बात यह है कि मेरी आंखों में जितने भी आंसू थे उन्हें मैं भारतमाता के दुःखद अवस्था पर बहा चुका हूँ। अब मेरी आँखों में कोई आंसू न रहा जो पत्नी के मरने पर बाहर आता।''

यह है मातृभूमि के प्रति भाव-प्रवणता। इसी को इस मन्त्र में ''तपः'' शब्द से विशेषित किया गया है। शास्त्र में तप की परिभाषा बतायी गयी है - तपो द्वन्द-सहिष्णुत्वम्'' अर्थात सुख-दुःख, हानि-लाभ, सर्दी-गर्मी- आदि द्वन्द (विपरीत-युगल) को चिन्ता किये बिना कर्त्तव्य पथ पर बढ़ते रहना ही तपस्या है। किसी शास्त्रकार ने कहा है -

यस्य कार्यं न विदनन्ति शीतमुष्णं मयं रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै तापस उच्यते॥

अर्थात जिसके कार्यों में सर्दी-गर्मी भय-प्रेम ऐश्वर्य-निर्धनता बाधक नहीं बनते और जो निरन्तर लक्ष्य की ओर बढ़ता रहता है वही तपस्वी होता है।

राष्ट्र की सेना वीर हो

यजुर्वेद के एक मन्त्र में प्रार्थना की गई कि राष्ट्र की सेना और सेनापति सदा विजयी एवं प्रगतिशील हो तथा उसमें वही गुण प्राप्त हो जो कि इन्द्र में होते हैं। मन्त्र है -

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः
दुश्च्यवनः पृतना षाड् अयुध्योऽस्माकं सेना अवतु प्रयुत्सु।

(यजुर्वेद १७/३९)

मन्त्र का स्पष्ट अर्थ है - (सहसा) शीघ्र तथा शत्रु पराजयकारी बल से (गोत्राणि) शत्रु के कुलों पर (अभिगाहमानः) आक्रमण करता हुआ (अदयः) दया रहित (वीरः) वीर (शतमन्युः) सैकड़ों प्रकार से शत्रुओं पर क्रोध प्रकट करने मे समर्थ (दुशच्यवनः) अविचलित (प्रतनाषाड्) सेनाओं से युद्ध करने में समर्थ (अयुध्यः) अजेय (इन्दुः) सेना पति (युत्सु) संग्रामों मे (अस्भावं) हमारी (सेनाः) सेनाओं को (यु अवतु) अच्छी प्रकार (का) करें

तात्पर्य यह है कि राष्ट्र रक्षा के लिए हमारी सेना सदा बलशाली एवं तत्पर रहे। दुष्ट शत्रु के प्रति कभी भी सरलता का व्यवहार उचित नही। आचार्य चाणक्य ने भी कहा है -

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम्।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र वक्रास्तिष्ठन्ति पादपा :॥

अर्थात बहुत सीधा भी नहीं बंनना चाहिए। जंगल में जाकर देखो। वहां सीधे सपाट वृक्ष ही काम के समझ के काटे जाते हैं जबकि टेढ़े आनन्द से खडे रहते हैं।

महाकवि भारवि भी लिखते हैं -

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवम्।
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः॥

अर्थात् दुष्टों के साथ दुष्टता न करने वाले लोग पराजित हो जाते हैं। इस सन्दर्भ में भारतीय इतिहास में पृथ्वीराज एवं मुहम्मद गोरी का उदाहरण व्यापक है कि किस प्रकार सरलता से अनेक बार पराजित करके भी पृथ्वीराज ने जब मुहम्मद गोरी को छोड़ दिया तब, एक बार अवसर आने पर, तथा पृथ्वीराज को पकड़ लिए जाने पर, मुहम्मद गोरी उसे नही छोड सका जिसका फल पृथ्वीराज को भोगना पड़ा।

शत्रु के साथ यथायोग्य व्यवहार करना ही उचित है। ऋग्वेद में एक मन्त्र है -

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुणि
वृजनेन वृजनान्त्संपिपेष मायाभिर्दस्यूरभिभूत्योजाः॥

(ऋग्वेद ३/३४/६)

इस मन्त्र में स्पष्ट संकेत है कि (वृजनेन) बलसे (मायामिः) चातुर्यपूर्ण बुद्धियों या कपटपूर्ण युक्तियों से (वृजिनान्) पापी (दह्यून्) साहसी दुष्कर्मियों को (एवं पिपेस) पीस डालें या नष्ट कर दें। महाभारत में भी लिखा है -

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यः
तस्मिन् तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो माययावर्तितव्यः
साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः॥

अर्थात जैसे के साथ तैसा बर्ताव ही धर्म है। मायावियों से छल पूर्वक एवं साधु से सरलता पूर्वक व्यवहार ही उचित है।

निरन्तर कर्मनिष्ट रहें

राष्ट्र को उन्नत स्वावलम्बी एवं सक्रिय बनाए रखने के लिए राजा या शाशकों को चाहिए कि वे प्रजा के अन्दर सदा कर्मठता एवं सक्रियता का भाव जागृत रखें। आलसी एवं निष्क्रिय प्रमादी राष्ट्र शीघ्र ही विनष्ट एवं पराधीन हो जाता है जब कि सक्रिय एवं जागरुक राष्ट्र प्रगति करता है। अथर्व वेद में लिखा है -

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।

अर्थात् यदि पुरूषार्थ मेरे दाएं हाथ में है तो सफलता मेरे बाएं हाथ का खेल है। ऋग्वेद में भी लिखा है -

यो जागार तमृचः कामयन्ते

यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः।

अर्थात जो जागते हैं, परिश्रम करते हैं उन्हें ही ऋचाएं चाहती हैं। जो परिश्रम करते हैं उन्हीं के पास साम पहुँचता है। जो उद्योग पारायण हैं ईश्वर भी उन्हीं का मित्र होता है।

ऋग्वेद ४/३३/११ में लिखा है -

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।

अर्थात जो श्रम से थककर चूर नहीं हो जाते हैं देव उनके मित्र नहीं होते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण में बहुत सुन्दर विवेचन किया है -

नाऽनाश्रान्ताय श्रीरस्ति पापो नृषद्वरोजनः।
इन्द्र इच्चरतः सखा। चरैवेति चरैवेति।

अर्थात जो पूरी शक्ति से परिश्रम नहीं करते उन्हें लक्ष्मी नहीं मिलती है। आलसी मनुष्य पापी होता है। भगवान परिश्रम करनेवालों का मित्र बनता है इसलिए श्रम करो श्रम करो-चलतें ही चलते रहो।

पुरूषार्थ प्रारब्ध से बड़ा होता है। प्रारब्ध को अविचारित मान्यता के कारण ही फलित ज्योतिष पर अन्ध विश्वास बढ़ता गया। इस भ्रान्ति ने भारत को बहुत बड़ी हानि पहुँचाई है। बरिव्तयार खिलजी केवल एक सौ पठानों को लेकर बिहार प्रान्त का शासक बना गया।

शत्रु के आक्रमण के समय भी जीत और हार के लिए मुहूर्त दिखवाते फिरना कितनी बड़ी मूर्खता का द्योतक है। राजनीति के महान् विद्वान आचार्य चाणक्य ने कोटिलीय अथर्वशास्त्र में लिखा है -

नक्षत्रम् अतिपृच्छन्तं बालमर्थोऽतिवर्तते।
अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यति तारकाः॥

अर्थात् काम के समय नक्षत्र और मुहूर्त छांटने वाले बालक अज्ञानी हैं। ऐसे अबोधों को सफलता नहीं मिलती। जो काम जिन उपायों से बन सकता है उनका अवलम्बन करना चाहिए। उस काम में ये आकाश के तारे क्या बनाएंगे या बिगाड़ेंगे ?

आइए स्वतन्त्रता की स्वर्ण जयन्ती वर्ष की समाप्ति पर हम समस्त राष्ट्र को सबल सक्षम एवं सक्रिय बनाने का संकल्प लेकर एक साथ राष्ट्र निर्माण में जुट जाएं। सफलता हमारी प्रतीक्षा कर रही है। वेद का भी यही सन्देश एवं आदेश है।

- डॉ. प्रशस्यमित्र शास्त्री
बी-२९, अबक नगर (जेलरोड)
रायबरेली. २२९००१